HindiTech
A Blind Double Peer Reviewed Bilingual Web-Research Journal

भारतीय भाषाओं में राष्ट्रबोध की अवधारणा

वागीश राज शुक्ल

vageesh1982@gmail.com

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के संस्कृत विभाग में अध्यापन

भावाभिव्यक्तये प्रयुक्तानां सार्थकशब्दानां समष्टिरेव भाषा इति उच्यते अर्थात् भावाभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त सार्थक शब्दों की समष्टि ही भाषा कही जाती है। भावाभिव्यक्ति हेतु भाषा की महत्ता कितनी है, इसका उदाहरण हमें रामायण के सुन्दर कांड में उस समय दृष्टिगोचर होता है, जब हनुमानजी को सोचने के लिए बाध्य होना पड़ता है यथा–

"यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्। रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥"

अर्थात् भगवती सीता से किस माध्यम में वार्तालाप किया जाये, क्योंकि यदि मैं द्विज के समान संस्कृत वाणी बोलूँगा तो सीता मुझे रावण समझ कर डर जाएगी। इससे प्रतीत होता है कि उस समय लंका में संस्कृत का प्राधान्य तो था ही, साथ ही अन्य भाषाएँ भी थीं, जिनका प्रचलन लोकव्यवहारार्थ था। संस्कृत के साथ-साथ अन्य भाषाएँ यथा- द्रविण भाषाओं के अंतर्गत परिगणित तमिल, तेलुगु, मलयालम आदि भाषाओं में आज भी संस्कृत संबंधी शब्दों का समावेश अथवा स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। इसी प्रकार आधुनिक आर्यभाषाओं से उपजी पंजाबी भाषा जिसकी लिपि गुरुमुखी है; में भी संस्कृत के शब्दों का प्रभाव सहजता से देखा जा सकता है और तो और पूर्वी भाषाओं के अंतर्गत परिगणित बंगाली, उड़िया, असमी इत्यादि भाषाएँ जिनका आविर्भाव आधुनिक आर्यभाषाओं से हुआ है, उनमें भी संस्कृत के शब्दों की विद्यमानता दिखलाई पड़ती है। इस प्रकार भारतवर्ष की संपूर्ण भाषाओं में संस्कृत का प्रभाव जो

दिखलाई पड़ता है, वो भाषाओं की एकता के साथ-साथ राष्ट्रबोध की भावना को भी जन्म देती हैं। सर विलियम जोन्स ने संस्कृत के अध्ययनोपरांत जिस तुलनात्मक भाषाशास्त्र को जन्म दिया उससे समग्र भाषाओं के वर्गीकरण का जो आधार सुनिश्चित किया गया उससे निस्संदेह भारतीय भाषाओं की एकता एवं संबंध विखंडित होता है, जो कि सर्वथा असंगत होने के साथ-साथ भ्रांतपूर्ण भी है। क्योंकि भाषाओं का वर्गीकरण जिसमें पहला आकृतिमूलक है, जो रूपात्मक वर्गीकरण नाम से भी ज्ञेय है; के अंतर्गत भाषाओं के रूपतत्त्व अर्थात् प्रकृति एवं प्रत्यय संबंधी विचार किया जाता है: आरम्भ में ही प्रतिपादित किया जा चुका है। साथ ही इस कथन का निरास करती हैं कि भारत की भाषाओं का ही आपस में कोई सम्बन्ध नहीं है तथापि हम इस वर्गीकरण के आधार को यदि स्वीकार भी कर लें तो भी यह कथन युक्तियुक्त होगा कि देश, काल, वातावरण एवं स्थान-भेद के प्रभाव से संस्कृत का स्वरूप व्याकृत होकर उससे निःसृत पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, हिंदी एवं अन्य भाषाओं का आविर्भाव तथा विकास हुआ। यही कारण है कि आज भी इन भाषाओं में संस्कृत का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। भारतीय भाषाओं में ऐक्य आरम्भ से ही था। महर्षि पतंजलि प्रणीत महाभाष्य में यह प्रयोग कि " प्रियतद्धिता: हि दक्षिणात्या: इत्यादि से सिद्ध होता है कि इसका प्रभाव दक्षिण तक था। कौषीतकि ब्राह्मण ग्रन्थ में वर्णित है कि ज्ञान की भाषा उदीच्य में बोली जाती है इसीलिए उसे सीखने के लिए उदीच्य में जाना पड़ता है (उदीच्येषुप्रग्याततरावागुद्यते) उदीच्य में रहकर ही छात्र उदीच्या भाषा सीखकर द्विज (संस्कृतजन) कहलाता था। अतः उन द्विजातियों के मुख से उच्चरित (जैसा कि आरम्भ में ही रामायण में हनुमानजी के प्रसंग में कथित) होने के कारण ही उदीच्या भाषा संस्कृत भाषा कहलाती थी। तमिल भाषा में संस्कृत "वड मोलि" कहलाती है जिसका अर्थ उदीच्या भाषा ही है। इसी भाषा को सीखने के लिए प्राच्यवासियों उदीच्य जाना पड़ता था जिससे यह सिद्ध होता है की भारत के दो भाग थे –

1. प्राच्य
2. उदीच्य

लोकोऽयं भारतवर्षः शरावत्यास्तु योऽवधेः।

देश:प्राग् दक्षिण :प्रोक्त:उदीच्य:पश्चिमोत्तरः।।

अर्थात् शरावती (रावी) के दक्षिण-पूर्व का देश प्राच्य एवं उत्तर–पश्चिम का देश उदीच्य कहलाता था। उदीच्य की भाषा पूरे भारत में ज्ञान –विज्ञान के प्रसार के लिए स्वीकृत थी और यही कारण था कि सिंघल (आधुनिक लंका) से लेकर केरल, बंग से कामरूप एवं प्रागज्योतिष तक से अल्पवय के छात्र "उपनयन संस्कार" हेतु रावी नदी पार कर द्विज (द्वितीय जन्म की प्राप्ति होना) पद को प्राप्त करते थे। कालांतर में वैयाकरणों ने सौविध्य एवं सौकर्य की दृष्टि से सीखने हेतु इस भाषा को नियमबद्ध किया। संपूर्ण भारत में तीन से चार हजार वर्ष तक ज्ञान–विज्ञान के अध्ययन–अध्यापन का माध्यम उदीच्या भाषा ही थी जिनके कारण ही अन्य भाषाओं का आविर्भाव तो हुआ ही, साथ ही साथ उनका पल्लवन एवं संवर्धन भी हुआ किंतु देश,काल के प्रभाव से विकृत होकर उनका स्वरुप धीरे–धीरे बदल गया जो कालान्तर में लोकभाषा प्रचलित हो गयीं और वही लोकभाषाएँ जनसामान्य हेतु व्यवहारार्थ प्रचलित हो गयीं जिनका परवर्तीकाल में नियमन कर पाणिनि ने अष्टाध्यायी का प्रणयन किया।

इसी प्रकार दूसरा वर्गीकरण भौगोलिक वर्गीकरण हैं जो भाषाओं का विभाजन भूगोल के आधार पर करता है वह भी भ्रामक है क्योंकि एकपक्षतः यह कथन की समस्त भारोपीय भाषाओं की जननी संस्कृत है जिसके अंतर्गत समस्त आर्यभाषाएं आती हैं; जिनमें लैटिन, ग्रीक, अँग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, रूसी, अवेस्ता, फारसी आदि भाषाएँ भी हैं किंतु द्रविण भाषाएँ नहीं: सर्वथा असंगत एवं निराधार है। द्रविण भाषापरिवार की भाषाओं का संबंध यदि आर्यभाषाओं से नहीं है तो फिर इन भाषाओं में संस्कृत के शब्दों का प्रभाव क्यों दृष्टिगोचर होता है। द्रविण देश के शंकराचार्य ने संस्कृत के माध्यम से ही अपनी मान्यताओं एवं सिद्धांतों को चतुर्दिक प्रचारित एवं प्रसारित क्यों किया ! क्या उस समय तक कोई भी द्रविण भाषा उत्पन्न ही न हुयी थी। यहाँ तक की वह तमिल भाषा भी जो प्राचीनत्व में समकक्ष कही जाती है क्या उसका भी आविर्भाव न हुआ था इत्यादि कथनों से यह पूर्णत: तर्कसंगत नहीं तो सर्वथा निराधार भी नहीं हो सकता। इस प्रकार पाश्चात्य विद्वानों द्वारा भारतीय भाषाओं में निहित राष्ट्रबोध की भावना को उद्भावित करने वाले तत्त्वों को विखंडित करने का उद्देश्य तो है ही साथ ही यह भी सिद्ध करने का निरर्थक प्रयास कि आर्य भारत में नहीं अपितु मध्य एशिया से अथवा यूरोप के किसी अन्य भू-भाग से आये थे। विदेशी विद्वानों द्वारा सैद्धांतिक रूप से भारतीय

भाषाओं में परस्पर जो विरोधात्मक स्वरुप उपस्थापित किया गया है वह राजनीतिक षड़यंत्र है; यह कहना असंगत न होगा।

भारतीय भाषाओं में परस्पर निहित राष्ट्रबोध की भावनाओं एवं संबंधों को विखंडित करने का प्रयास सर्वाधिक विदेशी भाषाओं ने किया यथा- मुगलकाल में फारसी इत्यादि जो कि उस समय के राजकीय कार्यों में प्रयुक्त होती थी; ने भी संस्कृत भाषाओं के साथ–साथ अन्य भारतीय भाषाओं को भी प्रभावित किया यही कारण था कि उस समय भी तुलसी प्रभृति के द्वारा अवधी भाषा में रामचरितमानस का प्रणयन कर भारतीय भाषाओ को विखंडित होने से बचाने का कार्य किया गया। आश्चर्य होता है यह सोचकर कि विदेशियों ने भारतीय ज्ञान -विज्ञान जो कि संस्कृत भाषा में निबद्ध था; का अध्ययन कर अपनी भाषाओं में उसका अनुवाद तो कराया, किंतु संस्कृत को अपने शासनकाल में लेशमात्र भी स्थान नहीं दिया चाहे वह मुगलकाल हो अथवा अंग्रेजों का शासनकाल ।आधुनिक युग में भी अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि अंग्रेजों के शासनकाल से लेकर अद्यतनीन एवं भविष्य में भी केवल एकमात्र अँग्रेजी भाषा ही ऐसी है, जिसने भारतीय भाषाओं को परस्पर जुड़ने नहीं दिया और न ही जुड़ने देगा ।उसका कारण राजनीतिक तो है ही साथ ही साथ व्यावसायिक कारण भी है, किंतु अब इसी व्यावसायिकता का ही यह प्रभाव है कि सभी विदेशी कम्पनियाँ अपने उत्पादों को आमजन तक पहुँचाने के लिए अब उनकी मातृभाषाओं के भी माध्यम से उन्हें प्रभावित करने का प्रयास कर रही हैं। मातृभाषा का संबंध जन्मकाल के साथ ही उपजे मनोगत भावों के साथ होता है इनका संबंध ही जन्य –जनकभाव का होता है इसके बाद किसी भाषा की स्वीकार्यता तो हो सकती है किंतु ग्राह्य नहीं हो सकती अर्थात् मातृभाषा का स्थान नहीं प्राप्त कर सकती। महात्मा गांधी द्वारा प्रणीत हिंद्स्वराज जिसकी लोकप्रियता एवं प्रासंगिकता आज भी है मूलतः उनकी अपनी मातृभाषा गुजराती ही लिखी गयी। इसी प्रकार रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा रचित गीतांजलि की रचना भी उनकी अपनी मातृभाषा बंगाली में ही की गयी। यदि भारतीय भाषाओं को सुरक्षित एवं संगठित बनाये रखना हैं तो मातृभाषा की उपयोगिता आवश्यक है साथ ही सभी भाषाओं के मूल तत्त्व एवं उनमें निहित संबंध तत्त्वों की सुरक्षा की जा सकती है क्योंकि बोलियों से ही भाषा का विकास होता है एतदर्थ इनका संरक्षण एवं संवर्धन आवश्यक है। इनकी उपयोगिता को भारत सर्वकार ने भी स्वीकार करते हुए अब

मातृभाषा को भी आधुनिक शिक्षा नीति के अंतर्गत समायोजित किया है जिससे अब यदि कोई छात्र अपनी मातृभाषा में पढना चाहे तो पंचमी कक्षापर्यंत अपनी प्रारंभिक शिक्षा ग्रहण कर सकता है और इसके लिए सभी राज्यों में एवं सभी शिक्षण संस्थाओं में स्थानीय किंवा क्षेत्रीय माध्यम से शिक्षा दिलाने के लिए वह संस्था उत्तरदायी होगी।

भारतीय भाषाओं में अद्यतनीन जो परस्पर संपर्क नहीं हो पाया है उसका प्रमुख कारण आज भी अँग्रेजी ही है, क्योंकि उसका प्रयोग आज के इस यांत्रिक युग में व्यापक एवं प्रमुखता से किया जा रहा है। यही कारण है कि आज भी बहुत से लोग ऐसे हैं जो अनीप्सित भाव से अँग्रेजी भाषा का व्यवहार अथवा सीखने के लिए बाध्य हैं लेकिन वहीं कुछ लोग ऐसे भी हैं जो अँग्रेजी भाषा को सीख लेने के पश्चात भी अपनी मातृभाषा में अथवा राष्ट्रभाषा में व्यवहार करना अशोभनीय समझते हैं। यहाँ तक कि अपनी हिंदी भाषा अथवा संस्कृत भाषा के प्रयोग हेतु अँग्रेजी के द्वारा ही करते हैं यही आचरण हमें अपनी मातृभाषा के साथ साथ राष्ट्रभाषा से पृथक करती है फलतः हम अपनी मूल भाषा से दूर तो होते ही हैं साथ ही साथ अपने राष्ट्र के धार्मिक, ऐतिहासिक ,राजनीतिक एवं साँस्कृतिक आधार से सर्वथा पूर्णत: पृथक हो जाते हैं। ध्यातव्य है कि हमारी भारतीय संस्कृति वैविध्यपूर्ण है और यही विविधता हमें अन्य राष्ट्रों से एक अलग पहचान दिलाती है। यद्यपि सभी प्रान्तों की स्थानभेद से अपनी अलग-अलग साँस्कृतिक परंपरा है तथापि ये परस्पर कहीं न कहीं अप्रत्यक्ष रूप से संपृक्त हैं और इनका यह संबंध हमें उन प्रांतीय भाषाओं में दिखलाई पड़ता है। भारत की सभी भाषाओं का साँस्कृतिक आधार भी एक है, जिसके कारण हम अल्पप्रयास से ही हिंदी ,बंगला ,मराठी इत्यादि भाषाओं को समझने एवं बोलने लगते हैं, जो हमारी राष्ट्रीय एकता को दृढ करने का कार्य करते हैं। किंतु देश की एकता से पहले हमें भाषाई एकता पर बल देना होगा, तभी अखंड राष्ट्र की संकल्पना संभव है अन्यथा भाषाई आधार पर भी विभाजन के फलस्वरूप नए राज्यों यथा महाराष्ट्र , गुजरात एवं तेलंगाना सदृश अन्य संभावी राज्यों के भी पुनः गठन हेतु भाषा-भेद के आधार पर आन्दोलन का रूप लेकर अखंड भारत को विखंडित करने का प्रयास करेंगे। इसके लिए हमें सर्वप्रथम संपर्क भाषा के रूप में अँग्रेजी के स्थान पर अपने भारत की भाषाओं को आत्मसात करना होगा और सौविध्य की दृष्टि से भारत की किसी एक भाषा(हिंदी) को संपर्क का माध्यम बनाना आवश्यक है, जिसमे भारत की संपूर्ण प्रांतीय भाषाओं के

शब्दों का समावेश हो! इसके लिए हमें एक शब्दकोष तैयार करना होगा ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार भारतीय संविधान के अनुच्छेद ३५१ के अंतर्गत यह प्रावधान कि भारत की राष्ट्रभाषा हिंदी में सभी भाषाओं के शब्द सम्मिलित किये जाए विशेषतः संस्कृत के शब्दों को आधार बनाकर। ऐसा करने पर ही भारतीय भाषाओं की एकता सुनिशिचित की जा सकेगी और साथ ही साथ बिना किसी भेद के आत्मसात करने भी सुगमता होगी।

निष्कर्षतः यह कथन समीचीन होगा की सर्वप्रथम पाचात्य विद्वानों द्वारा जिस अलगाववादी तुलनात्मक भाषाशास्त्र का प्रणयन किया गया वह सर्वथा असंगत, भ्रांतपूर्ण एवं निराधार है जो हमें भाषाई एकता से पृथक तो करता ही है, साथ ही साथ हमें अपने उस गौरवशाली इतिहास से भी अलग करता है जिसके निर्माण में हमारे पूर्वजों ने अपने रक्त एवं स्वेद से सिंचित कर स्वयं को तिरोहित कर दिया, हमें अपनी मान्यताओं एवं सिद्धांतों से पृथक करता है, जिनमें संपूर्ण भारत की आत्मा निवास करती है, अतः हमारा भारतवर्ष पूर्णतया विखंडित हो की इससे पूर्व हमें सर्वप्रथम भारत की संपूर्ण भाषाओं की एकता पर बल देना होगा, क्योंकि हमारा राष्ट्रबोध हमारी भारतीय भाषाओं ही में छिपा हुआ है।

संदर्भग्रंथ-सूची

- उपाध्याय, बलदेव (1944). संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाराणसी: शारदा मंदिर।
- द्विवेदी, कपिल देव (2012) भाषाविज्ञानं एवं भाषाशास्त्र, वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन।
- बोस, राजकमल (1997). भारत की भाषाएँ, दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
- महाभाष्य, वाराणसी: चौखम्भा प्रकाशन।
- वाल्मीकि रामायण, गोरखपुर: गीता प्रेस।

- व्होर्फ, बेंजामिन ली () भाषा विचार और वास्तविकता, चण्डीगढ़: हरियाणा साहित्य अकादमी।
- शर्मा, राम विलास (2009) भारत की भाषा समस्या, दिल्ली: राजकमल।

Citation: शुक्ल, वागीश राज (2017). भारतीय भाषाओं में राष्ट्रबोध की अवधारणा, HindiTech: A Blind Double Peer Reviewed Bilingual Web-Research Journal, 8 (6), 67-73. URL: https://hinditech.in/bhartiya-bhashaon-men-rashtra/